ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 3, Issue 3, March 2016

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में दलित विमर्श

Dr. Dwarka Prasad Meena

Associate Professor, Dept. of Hindi, SNMT Govt. Girls College, Jhunjhunu, Rajasthan

सार

सदियों से जिसे साहित्य और समाज में हाशिए पर फेंक दिया गया था। जिसे शुद्र, हरिजन, अवर्ण, पंचम, अतिशूद्र आदि नामों से विहित करके दया का पात्र बना दिया गया था, वही आज प्रखर आत्मबोध के साथ इन सारी शब्दावलियों को ठुकराकर स्वयं 'दलित' के रूप में अपनी अस्मिता का बोध करा रहा है। प्रख्यात मराठी दलित साहित्यकार शरण कुमार लिंबाले के शब्दों में, 'दलित को 'दया' से घृणा है, उस दया और सहानुभूती नहीं 'अधिकार चाहिए। 'दलित' शब्द और 'दलित साहित्य' अपनी अर्थवक्ता, व्यापकता, सार्थकता तथा अस्मितागत बोध के रूप में आज विद्वज्जनों के मध्य साहित्यिक विमर्ष के विषय बने हुए हैं। अतः 'दलित का आशय' व्यापक दृष्टि और बहस की माँग करता है। दलित शब्द के अन्दर कुचले गए, दबाए गए जनों की जीवन कहानी उतनी ही पुरानी है, जितनी भारतीय हिंदू संस्कृति पुरातन है। चातुर्वण्य व्यवस्था भारतीय संस्कृति की अपनी एक विचित्र विशेषता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों पर आधारित चातुर्वण्य-व्यवस्था ऋग्वैदिक कल से लेकर अद्यतन जातियों की श्रेष्ठता-क्रम में विद्यमान है। इन चारों वर्णों मं शूद्र सबसे नीचे आता है, जिसका कर्तव्य तीनों वर्णों की सेवा करना बताया गया है।

लगभग 200 ई0 पू0 से 200 ई0 सन् के बीच शूद्रों की स्थित का ज्ञान मनु के विधि ग्रंथ 'मनुस्मृति' से होता है। मनु ने अपने ग्रंथ में शूद्रों के प्रति घोर अमानवीयता का परिचय दिया है।
प्राचीनकाल में शूद्रों की स्थिति नगण्य और उनका जीवन निरर्थक था। उस समय शूद्रों के जीवन का एक ही लक्ष्य था दास्य भाव से ब्राह्मण की सेवा करना। शूद्रों की स्थिति का जायजा लेते हुए इतिहासकार रामशरण शर्मा 'शूद्रों का प्राचीन इतिहास' में लिखते हैं कि उस समय शूद्रों की दशा और खराब हो गई थी।
मौर्यकालीन रचना 'कौटिल्य का अर्थशास्त्र' में कौटिल्य ने विहित किया है कि जब कोई शूद्र अपने को ब्राह्मण कहे, देवताओं की संपत्ति चुराए या राजा का बैरी हो तो, विशैली दवाओं का प्रयोग करके उसकी आँखें नष्ट कर दी जाएं या उससे आठ सौ पठ जुर्माना वसूला जाए। कौटिल्य का अर्थशास्त्र सः आर श्याम शास्त्री, द्वितीय संस्करण, मैसूर, 1924, 10-10
व्याख्याताकारों के अनुसार माना जाता है कि चातुर्वर्ण्य व्यवस्था गुण, कर्म एवं स्वभाव के आधार पर निर्धारित होती थी, जिसमें ऊँच-नीच, उत्तम-अद्यम, स्पृश्य-अस्पृश्य ऐसी संकीर्णताओं के लिए स्थान नहीं था, कर्म के आधार पर ही व्यक्ति अपने वर्ण का निर्धारण और परिवर्तन कर सकता था। परन्तु उत्तर वैदिक काल आते-आते यह वर्णव्यवस्था जन्म पर आधारित होकर जाति के रूप में परिवर्तित हो गई। इस प्रकार चार वर्ण, चार जाति में बंट गए और इन्हीं से हजारों जातियां-प्रजातियां बन गई।
महात्मा गांधी द्वारा दिया गया 'हरिजन' शब्द का विरोध इस वर्ग द्वारा निम्नलिखित तर्कों के आधार पर किया गया :-

• हरिजन शब्द में दया का भाव निहीत है।

• मंदिरों में देवदासियों द्वारा जनित संतानों को भी हरिजन नाम दिया गया, जिनकी सामाजिक पहचान हरामी की थी।
• नामकरण करने वाले स्वयं को हरिजन क्यों नहीं बताते। क्या वे स्वयं हरिजन नहीं है।
• हरिजन शब्द में हीनता का भाव निहीत है।

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 3, Issue 3, March 2016

सन् 1991 में उ.प्र. और म.प्र. सरकारों द्वारा और बाद में केन्द्र सरकार (चंद्रशेखर) सरकार द्वारा 'हरिजन' शब्द को प्रशासनिक, सामाजिक एवं व्यवहारिक स्तर पर प्रयोग न करके यह अध्यादेश जारी किया गया कि उन लोगों को यह नामकरण पसंद नही आया। लेकिन सरकार ने हरिजन के स्थान पर अनुसूचित जाति को शासकीय कार्यों के लिए उचित माना, जबकि दलित शब्द अपनी पहचान बना चुका था।

दलित साहित्य वर्तमान का ऐसा विमर्श बन चुका है जिसका अध्ययन किए बिना सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य को समझना ग़लत होगा। भारी संख्या में इस दिशा में लेखन के लिए प्रेरित होना यह बताता है कि यहाँ भी कम चेतना नहीं है बस बोलने का मौक़ा नहीं दिया गया। आज दलित विमर्श हिन्दी का ही नहीं, हिन्दी प्रदेश की सीमाओं से बाहर निकालकर बड़ा स्वरूप ले चुका है, जिसका मूल उद्देश्य है दलित जीवन की बुनियादी समस्याओं को जनता के सामने लाना। सम्पूर्ण भारतीय भाषा में दलित लेखन तेज़ी से हो रहा है। 'दलित साहित्य' के लेखन में किस-किस को शामिल किया जाए यह अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाया है। दलित साहित्यकारों का मनाना है कि दलित की पीड़ाओं को वही समझ सकता है जिसने इसको भोगा है, यानि कि अनुभूति के आधार पर, जबकि दूसरा खेमा दलितों से इतर लिखे गए साहित्य को, जो दलित जीवन पर उसी भी उसमें शामिल करने की बात कर रहा है। हिन्दी साहित्य के मुख्यधारा में 'दलित विमर्श' का मुद्दा अस्सी के दशक में उभरा जो नब्बे तक आते-आते काफी चर्चित हो चुका था। साहित्य की बहुचर्चित पत्रिका 'हंस' में दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' धारावाहिक रूप मे प्रकाशित हुई जो आलोचकों और पाठकों में बहुत चर्चित हुई। 1997 में इसे राजकमल प्रकाशन ने आत्मकथा के रूप में प्रकाशित किया जो बहुत चर्चित हुआ। यहीं से दलित साहित्य, विमर्श का मुद्दा बन गया। दलित साहित्य में दलित साहित्यकार अपने जीवन के कटु अनुभवों को व्यक्त करते हैं, जिसका एक मात्र उद्देश्य यही है कि पूरी दुनियाँ यह जाने के उनके साथ क्या दुर्व्यवहार हुआ है। विख्यात दलित चिंतक कंवल भारती ने लिखा है- "दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है, जिनमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है, अपने जीवन-संघर्ष में जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनका उसी की अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला का नहीं, बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है।"[1]

परिचय

इक्कीसवीं शताब्दी के आरंभ के पूर्वा पर समय में हिन्दी साहित्य में दलित-चेतना/दलित आंदोलन परएक मजबूत आंदोलन के रूप में उभरा और विकसित हुआ। हिन्दी की कुछ पत्रिकाओं ने स्त्री-विमर्श के साथदलित-चेतना/दलित आंदोलन को प्रमुख स्थान दिया तथा अन्य हिन्दी पत्रा-पत्रिकाओं ने भी दलित-चेतना/दलित आंदोलन पर बहसकरके इसे और भी व्यापक बनाने का प्रयत्न किया। इक्कीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में दलितलेखकों द्वारा प्रेमचंद के विख्यात महाकाव्यात्मक उपन्यास 'रंगभूमि' को सार्वजनिक रूप से जलानेतथा उन्हें दलित-विरोधी लेखक बताने की घटना ने दलित-विमर्श को साहित्य के केंद्र में लाकरस्थापित कर दिया

प्रेमचंद को दलित-विरोध के केंद्र में लाने से हिन्दी-संसार में बड़ीव्यापक प्रतिक्रिया हुई और प्रेमचंद के पक्ष-विपक्ष दोनों में पत्रा-पत्रिकाओं में लेख छपने लगे तथादलित लेखकों की आत्मकथाएं, दलित कहानी-संग्रह, प्रेमचंद की दलित-कहानियों के संकलन तथादलित साहित्य पर महत्त्वपूर्ण आलोचनात्मक पुस्तकों के प्रकाशन का दौर शुरू हुआ।[1]

हिन्दी साहित्य में दलित जीवन की समस्याओं को साहित्य में आरंभ से उठाया जा रहा है। आज़ादी से पहले प्रेमचंद, निराला, यशपाल आदि कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में हाशिए के समाज के पक्ष में मज़बूती से लिखा। आज़ादी के बाद जब भारतीय समाज की तस्वीर काफ़ी बदली मार्कण्डेय, अमरकांत, राजेन्द्र यादव, नैमिशराय, ओम प्रकाश वाल्मीकि, पुन्नी सिंह, प्रेम कपाड़िया, डॉ. दयानंद बटोही, डॉ. तेज सिंह, बाबूलाल खंडा, रामचंद आदि चर्चित रचनाकार हैं। महिला कथाकारों में उषा चन्द्रा, रमणिका गुप्ता, रजत रानी 'मीनू', मैत्रेयी पुष्पा, सुभद्रा कुमारी जैसे रचनाकार इसमें शामिल होकर मज़बूत लेखन किया। प्रेमचंद पहले ऐसे साहित्यकार हैं जिनकी रचनाओं [2]में दलित जीवन को प्रमुखता से स्थान मिला है। छुआछूत, जात-पात, आडंबर, कर्म-कांड आदि का वह ख़ूब विरोध करते रहे। उनकी कहानियाँ सद्गति, कफ़न, 'ठाकुर का कुआँ' आदि में दलित जीवन को त्रासदी को बहुत गहराई से अभिव्यक्त किया गया है और साथ ही उनके साथ अन्याय करने वाले ब्राह्मणवादी विचारधारा के लोगों को भी आड़े हाथों लिया है। 'सदगति' में प्रेमचंद ने जहाँ चमारों पर हो रहे शोषण और अत्याचार का मार्मिक चित्रण किया है वहीं 'पूस की रात', 'कफ़न' में दलित प्रतिरोध को साफ़-साफ़ महसूस किया जा सकता है।[3] हालाँकि दलित साहित्यकार प्रेमचंद को दलित साहित्य के दायरे में लाना पसंद नहीं करते क्योंकि उनका मानना है कि प्रेमचंद ने कभी भी दलित जीवन की पीड़ाओं को नहीं झेला- "दलित साहित्य में प्रेमचंद की परम्परा नहीं चलने वाली है। दलितों के बारे में प्रेमचंद का सत्य चिड़िया की आँख से देखा हुआ सत्य था।

आज दलित अपने अनुभव से गुज़र कर लिख रहा है।[4] दलितों को जो मज़बूती मिली है वह धर्मवीरजी और आम्बेडकरजी से मिली है। जब डॉ.आम्बेडकर ने दलितों के लिए मंदिरों के दरवाज़े खोलने की लड़ाई लड़ी तब भी प्रेमचंद आम्बेडकर के साथ नहीं गाँधी के साथ खड़े थे। बाद में डॉ. आम्बेडकर ने कहा कि उनकी लड़ाई सिर्फ़ इतनी थी कि दलित भी भारतीय हिन्दू समाज का हिस्सा हैं इसलिए उन्हें भी मन्दिर जाने का हक़ होना चाहिए।"[2]

प्रेमचंद के बाद सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का उपन्यास 'चतुरी चमार', 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'कुल्लीभाट' आदि रचनाएँ दलित चेतना से परिपूर्ण हैं। उनकी कविता 'वह तोड़ती पत्थर' हिन्दी कविता के इतिहास का मील का पत्थर है। इसके साथ ही यशपाल की कहानी 'परदा', राहुल सांकृत्यायन की 'पुजारी', 'प्रभा और सुमेर' भी दलित जीवन की अभिव्यक्ति करती हैं। [5]

दलित साहित्य को तीन स्तरों पर समझा जा सकता है। पहला भोगे हुए यथार्थ के आधार पर। दूसरा उनका लिखा गया जो साहित्य नहीं है। तीसरा स्तर विचारधारा का है। क्या प्रगतिशील होकर दलित साहित्य लिखा जा सकता है? हालाँकि यह सवाल बहुत उलझा हुआ है और बुनियादी भी है। क्योंकि विचारधारा के स्तर पर तो दलित साहित्यकार व आलोचक, चिंतक प्रगतिशील यानी मार्क्सवाद का भी बहुत महत्व नहीं हैं क्योंकि उनका मानना है कि इसमें अधिकतर सवर्ण लोग ही हैं। विख्यात दलित साहित्यकार माता प्रसाद का मानना है[6] कि- "दलित साहित्य वह साहित्य है जिसमें वर्ण समाज में सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षिक और राजनीतिक दृष्टि से दलित, शोषित, उत्पीड़ित, अपमानित, उपेक्षित, तिरस्कृत, वंचित, निराश्रित,[7] पराश्रित, बाधित, अस्पृश्य और असहाय है, पर साहित्य की रचनाएँ हैं, वही दलित साहित्य की श्रेणी में आता है। इसमें बंधनों में जकड़ी स्त्रियाँ, बंधुआ मजदूर, दास, घुमन्तू जातियाँ, अनुसूचित जातियाँ और अनुसूचित जनजातियाँ आती हैं। दलित साहित्य वेदना, चीख और छटपटाहट का साहित्य है।"[3]

दलित साहित्य का विस्तार हिन्दी साहित्य में आने के बाद ही हुआ। 'अपने-अपने पिंजरे' 'मैं भंगी हूं', 'जूठन', 'तिरस्कृत', 'दोहरा अभिशाप', मुर्दहिया, मणिकणिका, जूठन भाग दो आदि आत्मकथाओं ने साहित्य प्रकाशित होते ही सबका ध्यान अपनी तरफ़ खींचा। दलित लेखन का आरंभ सबसे पहले मराठी भाषा में ही हुआ, जिसका आधार आंबेडकर की वैचारिकी और उनका जीवन संघर्ष है। मराठी भाषा में दो सौ से अधिक दलित आत्मकथाएँ लिखी जा चुकी हैं।[8] हिन्दी के साथ ही अन्य भारतीय भाषाओं में आत्मकथाएँ बड़ी मात्रा में लिखी जा रही हैं। आत्मकथा पाठकों को तो अपने आपसे जोड़ा ही बल्कि उन्हें सोचने पर भी विवश किया। देश के बाहर के पाठकों ने यह महसूस किया कि विश्वगुरु कहे जाने वाले देश में कितनी अमानवीयता है। दलितों ने सिर्फ़ लेखन के मध्यम से ही पाठकों का विस्तृत संसार विकसित कर लिया। दलितों द्वारा लिखा जा रहा साहित्य सिर्फ़ अभिव्यक्ति के लिए नहीं है बल्कि एक सम्पूर्ण आंदोलन की तरह है- "दलित साहित्य का समाज बोध पाठक और श्रोता की चेतना एवं अनुभूति को प्रभावित करनेवाली गहन संवेदना से ही पूरा होता है।[9] साहित्य पर समय और समाज का स्पष्ट प्रभाव होता है। साहित्य की रचनाओं में मनुष्य की मस्तिष्क पर पड़नेवाले जीवन और जगत की घटना और स्थितियों का ही प्रतिबिंब होता है। दलित साहित्य की मान्यता है कि कला या साहित्य को सामाजिक दायित्व का निर्वाह करते हुए कला सृजन में आगे बढ़ना चाहिए। इस दृष्टि से दलित साहित्य शुद्ध कला न होकर एक सामाजिक आंदोलन है।"[4]

दलित लेखक समानता, सम्मान और अपनी आज़ादी के लिए लिख रहे हैं। जाति, नस्ल या रंग के आधार हो रहे भेदभाव को वह ख़त्म करना चाहता है। दलित साहित्यकार चाहता है कि समाज में धर्म, सत्ता दर्शन तथा जन्म के आधार पर किसी व्यक्ति की श्रेष्ठता घोषित न किया जाए। सम्पूर्ण रूप में देखें तो यह जाति से मुक्ति का साहित्य है-[10] "जाति एक ऐसा राक्षस है जो आपका रास्ता काटेगा। जब तक आप इस राक्षस को नहीं मारते तब तक आप न तो कोई राजनीतिक सुधार कर सकते हैं और न ही आर्थिक सुधार कर सकते है।"[5]

हिन्दी साहित्य के इतिहास में कहानी की यात्रा सबसे अधिक रोमांचक और परिवर्तनशील रही है। समय और समाज की बदलती सोच ने सबसे पहले कहानी को ही बदला। बीसवीं सदी के कुछ वर्ष पूर्व ही आरंभ हुई कहानी का लोकजीवन और लोकभाषा के समन्वय से होता है। इस दौर की कहानियाँ तिलिस्मी और लोककथाओं की आंतरिक संवेदना से पूर्ण थीं।[11] हिन्दी कहानी की यथार्थवादी यात्रा प्रेमचन्द के आगमन से आरंभ होती है। प्रेमचंद ने हिन्दी कहानी को आम जनता के द्वार पर लाकर खड़ा कर दिया। ग्रामीण जीवन की मार्मिक कथा को साहित्य में प्रस्तुति देने के कारण ही प्रेमचंद को कथा सम्राट कहा गया। प्रसाद ने ऐतिहासिक और पौराणिक पात्रों को आधार बनाकर तत्कालीन सामाजिक समस्या को जीवंत किया।[12] उसके बाद नई कहानी, अकहानी, संचेतन कहानी, समांतर कहानी, अकहानी जैसे कहानी युगों ने कहानी की संवेदना और भाषा को कई पड़ावों की यात्रा करवाई। हिन्दी कहानी में दलित जीवन उपेक्षित रहा। दलित पात्रों का सृजन तिरस्कार भाव से हुआ। प्रेमचंद की पूस की रात कफ़न, सद्गति, दूध का दाम, ठाकुर का कुआँ, नशा, मंत्र जैसी कहानियों में दलित जीवन की विडंबनाओं को स्थान मिला ही।

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 3, Issue 3, March 2016

कफ़न और सद्गति ने दलित विमर्श में अपनी उपस्थिती दर्ज की लेकिन कुछ दलित कहानीकारों ने इसे दलित कहानी माना ही नहीं। [13]

दलित साहित्य का आरंभ 1980 के बाद आत्मकथा लेखन से हुआ। कथाकार राजेंद्र यादव ने विख्यात दलित साहित्यकार ओमप्रकाश वाल्मीकि की चर्चित आत्मकथा 'जूठन' को कई अंशों में हंस में प्रकाशित किया जिसने सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में अपना स्थान बनाया। अस्सी के अंतिम दशक में ही दलित कहानी का आरंभ होता है जिसमें 'ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, सुशीला टाकभौरे, जयप्रकाश कर्दम, श्यौराज सिंह 'बेचैन', रत्नकुमार सांभरिया, कालीचरण सनेही, रूपनारायण सोनकर आदि का नाम उभरकर सामने आता है। युवा कहानीकारों में अजय नावरिया अनीता भारती, दिलीप काठेरिया, कैलाश वानखेडे आदि का नाम लिया जा सकता है। [14]

दलित कहानियाँ दलित जीवन को न केवल अभिव्यक्त करती हैं बल्कि अपने आस-पास के समाज का भी चित्रण करती हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि न केवल दलित साहित्यकार हैं बल्कि आलोचक और चिंतक भी हैं। 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र' उनकी बहुचर्चित पुस्तक जिसमें वह दलित साहित्य की अंतरयात्रा को बख़ूबी समझाते हैं। उनका स्पष्ट मानना है कि दलित साहित्यकार ही दलित साहित्य लिख सकता है। वह अनुभूति पक्ष को अधिक महत्व देते हैं। 'सलाम' ऐसी ही कहानी है जो अनुभूति की प्रामाणिकता को प्रस्तुत करती है। वह न केवल दलित जीवन की मार्मिक अभिव्यक्ति करती है बल्कि सवर्ण मानसिकता को भी प्रस्तुत करती है।[15] 'सलाम' कहानी में परंपरा का विरोध और दलित प्रतिरोध को समझा जा सकता है। इस कहानी में परंपरा अनुसार शादी होने के बाद लड़का सभी उच्च घर वालों के घर के सामने से गुज़रता है और उन्हें सलाम करता है, जिससे प्रत्येक घर से उसे कुछ न कुछ मिलता है। शहर में पढ़ा-लिखा दलित लड़का गाँव की अपमानित परंपरा का विरोध करता है और 'सलाम' करने नहीं जाता है जिसके कारण उसे कई तरह से प्रताड़ित करने का प्रयास किया जाता है। ओमप्रकाश वाल्मीकि इस कहानी में वर्चस्व की सत्ता को न केवल ठुकराते हैं बल्कि चुनौती भी देते हैं। सदियों से दमित अस्मिताओं और पीड़ित जनसमुदाय को एक दिशा देने का प्रयास करते हैं। यह कहानी केवल दलित जाति ही की नहीं बल्कि मुस्लिम जाति के वर्ग-भेद को व्यक्त करते हैं। कहानी के अंतिम में मुस्लिम पात्र भी दलितों के साथ बुरा व्यवहार करता है। [16]

रूपनारायण सोनकर एक ऐसे दलित साहित्यकार हैं जिनकी रचनाएँ प्रेमचंद की रचनाओं से मुठभेड़ करने की कोशिश करती हैं। 'गोदान' की ही तर्ज़ पर लिखा गया इनका 'उपन्यास' 'सूअरदान' दलित साहित्य में बहुत चर्चित रहा। प्रेमचंद के ही कहानी 'सद्गति' नाम से लिखी सोनकर की कहानी 'सद्गति' कहानी सांप्रदायिकता को बढ़ाने वाले कुछ कुपात्रों की कहानी है। सोनकर की यह कहानी केवल दलित समाज ही नहीं वरन सम्पूर्ण समाज में धार्मिक आस्था को ठेस पहुँचाने तथा उसके नाम पर लोगों के हृदय में नफ़रत भरने वाले लोगों का पोल खोलती है। दलित कहानीकारों की एक विशेषता यह है कि वह सिर्फ़ समस्या नहीं उठाते हैं बल्कि उसका निदान भी प्रस्तुत करते हैं। इसी कहानी का मुस्लिम पात्र शब्बीर, जो किन्हीं कारणों से समाज में धर्म के नाम पर उन्माद फैलता है। जब उसे अपनी ग़लती का एहसास होता है तो माफ़ी भी माँगता है- "मैंने गुनाह किये हैं। मैं मानवता को भूल गया था। स्वार्थ, अंधा धर्म और मज़हब ने मुझे बिलकुल अंधा कर दिया था। हम दोनों समुदाय के लोग भाई-भाई हैं। मैंने अपने भाइयों को मारकर बहुत बड़ा अपराध किया है। मुझे सज़ा मिलनी चाहिए।"[17]

दलित कहानी समाज के फैली विसंगतियों और अराजकता को ख़त्म करने का मार्ग भी खोजती है। अम्बेडकर दलित साहित्य के आधार हैं उनकी विचारधारा ही दलित कहानियों का प्राण तत्व है। उनका साहित्य और सम्पूर्ण लेखन दलित जीवन को सम्मान और अधिकार दिलाने के लिए लिखा गया है। वह जाति व्यवस्था को समूल नष्ट करना चाहते थे तथा उसके नाम पर फैलाये जा रहे सांप्रदायिक परिवेश के भी ख़िलाफ़ थे। उनका मानना था- "जाति ने हालाँकि एक काम किया है। इसने हिन्दू समाज को पूरी तरह से असंगठित और अनैतिक अवस्था में ला दिया है। ...यह तो जातियों का समूह मात्र है। प्रत्येक जाति अपने अस्तित्व के प्रति सचेत है। इनका अस्तित्व जाति-व्यवस्था के जारी रहने का कुल परिणाम है।[18] जातियाँ एक संघ भी नहीं बनातीं। कोई जाति दूसरी जातियों से जुड़ने की भी भावना नहीं रखती, सिर्फ़ हिन्दू-मुस्लिम दंगे के समय ये आपस में जुड़ती हैं।"[6]

दलित कहानियाँ दलित जीवन में जबरन भर दिये गए अपमान और तिरस्कार के विरोध में अपनी आवाज़ बुलंद करती हैं साथ ही दलित समाज की अपनी विसंगतियों को भी अभिव्यक्त करती हैं। दलित साहित्यकारों ने अपने समाज में फैले आडंबर और सामंतवादी मानसिकता को भी ख़त्म करने का आह्वान किया है- "दलित समाज को अपनी मुक्ति के लिए सवर्णों से ही नहीं अपितु स्वयं से ही भी संघर्ष करना पड़ेगा। यह बहुत पीड़ा दायक और मुक्ति की राह में बड़ी रुकावट है।"[7]

जितने भी दलित साहित्यकारों ने समाज और साहित्य में अपना सम्मानित स्थान बनाया है, सभी ने शिक्षा के बल पर यह स्थान प्राप्त किया है। शिक्षा दलित समाज की बुनियाद को मज़बूत करती है। दलित साहित्यकारों ने यह प्रेरणा भी बाबा साहब से

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 3, Issue 3, March 2016

ली है। आंबेडकर दलितों को शिक्षित करनेके सभी प्रयासों के लिए प्रतिबद्ध से सरकारी, ग़ैर-सरकारी संस्थाओं के साथ अपने व्यक्तिगत प्रयासों द्वारा वह उन्हें शिक्षित करना चाहते थे। शिक्षा द्वारा ही दलितों और स्त्रियों में अपने अधिकार और अस्मिता को समझने की चेतना आयी। डाली शिक्षा द्वारा ही स्वयं के अधिकारों के लिए संघर्ष के लिए एकत्र हुए। आंबेडकर कहते थे- 'शिक्षित बनो', 'संगठित हो' और 'संघर्ष करो' एवं 'अप्पो दीपो भव' अर्थात् 'अपना दीपक स्वयं बनो'! बाबा साहब के इन्हीं शब्दों ने सदियों से शोषित दलितों के अंदर सोयी हुई उदासीनता को तोड़कर उन्हें संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया। आंबेडकर का मानना था कि "प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षित किया जाना चाहिए। हर एक व्यक्ति में अपनी रक्षा की क्षमता होनी चाहिए।[19] अपने अस्तित्व को बनाए रखने के लिए, प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह बहुत ज़रूरी भी है।"[8]

दलित समाज जान चुका है कि शिक्षा उसका बुनियादी आधार है। अभी तक तो वह मानकर चल रहा था कि शिक्षा उनके लिए है ही नहीं। जब उसे अपना अधिकार पता चला तो उसने अपने प्रति होने वाली असामनता का विरोध आरंभ किया- "आप लोग हमारे मुहल्ले के लड़कों को इस तरह डोम कहकर अलग-अलग बैठा नहीं सकते।"[9]

लेकिन सदियों से उनपर अत्याचार करने वाला समाज यह कब समझ पाया? उसकी सोच कब बदली? उसने उनके साथ हमेशा यही व्यवहार किया जो सदियों से करता आया है। जब दलित समाज अपना अधिकार माँगता है तो उसे गालियाँ ही सुननी पड़ती हैं- "क्यों रे क्यों दौड़ गया था रे हरामी का पिल्ला। दो-चार हाथ कस के पड़ेंगे तो जानेगा साला कि डोम लोगों को अलग-अलग क्यों बैठाया जाता है।"[10] जयप्रकाश कर्दम दलित साहित्य के बड़े लेखक हैं। इनकी कहानियाँ दलित जीवन के समाजशास्त्र को बेहतर ढंग से समझाने का प्रयास करती हैं। हैं। कर्दम जी की बहुचर्चित कहानी 'नो बार' शिक्षित, नौकरी-पेशा दलित युवक की कहानी है जो अपनी शादी के लिए अख़बार में विज्ञापन देखता है। जिसमें से एक रिश्ता उसे पसन्द आता है।[20] विज्ञापन में स्पष्ट है कि जाति का कोई बंधन नहीं है युवक अपनी शादी हेतु संबधित पते पर पत्र लिखता है जहाँ उसे बुलाया भी जाता है, जहाँ वह अपने कुशल व्यवहार और शिक्षित व्यवहार से लोगों का मन जीतने में सफल भी होता है लेकिन जैसे ही पता चलता है कि वह दलित है, लड़की का पिता भड़क जाता है। हालाँकि बेटी उसका पक्ष लेते हुए कहती है- "क्यों पापा, जब हम जाति-पांति को मानते ही नहीं तो" उसका पिता जवाब देता है- 'नो बार' का यह मतलब तो नहीं कि किसी चमार-चूहड़े के साथ...।" यह कहानी उच्च वर्ग के अंदर बैठे कुत्सित भाव की अभिव्यक्ति करता है जो ऊपर से तो प्रगतिशील होने का नाटक करते हैं लेकिन अंदर से जाहिल और जातिवादी होते हैं।[21]

दलित कहानियों में दलित साहित्यकार अपने अंदुरूनी समाजिक समस्या को भी मज़बूती से व्यक्त करता है। वैश्वीकरण के इस युग में जहाँ सम्पूर्ण विश्व ग्राम की कल्पना में तब्दील हुआ है, वहीं दलितों का शोषण बढ़ा है। डॉ. सी.बी. भारती वरिष्ठ दलित साहित्यकार हैं। उनकी कहानी 'भूख' बंजारा समाज की महिलाओं के हो रहे शोषण को दिखाया है। इस कहानी में पितृसत्ता की क्रूर व्यवस्था का भी चेहरा प्रस्तुत किया गया है। इस कहानी की मुख्य महिला पात्र का पिता उसे पैसों के लालच में ऐसे हाथों में बेच देता है जो उसका ग़लत प्रयोग करना चाहते हैं।[22]

यह दलित साहित्य की सीमा कह लें या फिर चुनौती, दलित महिलाएँ कहानी विधा में अभी बड़े स्तर पर कार्य नहीं कर पा रही है। दलित महिलाएँ आज भी पितृसत्ता, जातिवाद, अशिक्षा और ग़रीबी में अपना जीवन बिता रही हैं। समाज में उनके प्रति एक घृणा का भाव अभी भी बना हुआ है- "दलित स्त्री की निम्न स्थिति और अधीनता को गुलामी का पर्याय बनाने में पुरुष सत्ता ने मानवता को शर्मसार किया है लेकिन देश की आज़ादी दलित स्त्री को स्वाधीनता लौटने में समर्थ नहीं हो पायी। "[11]

दलित महिला लेखन में कहानीकारों की कमी है। अधिकतर दलित महिलाएँ कविता विधा में लेखन कर रही हैं। वह इस दिशा में व्यापकस्तर पर प्रयास करेंगी तो निश्चय ही दलित समाज की स्त्रियों की पीड़ा यथार्थ रूप में सामने आ सकेगी। दलित स्त्रियों को आंदोलन से जोड़े बिना न साहित्य आगे बढ़ सकता है नहीं समाज। उनकी उपेक्षा सम्पूर्ण दलित समाज की उपेक्षा है- "दलितों और स्त्रियों के अस्मिता आंदोलनों की उपेक्षा करना तो न तो किसी मानव मुक्ति की कल्पना की जा सकती है न मानव मुक्ति की वृहत्तर जीवन मूल्यों से जुड़े बिना अस्मिताओं के ये आंदोलन आने व्यापक लक्ष्य को ही पा सकते हैं।"[12]

दरअसल दलित साहित्य में पुरुषों ने तो अपना स्थान बना लिया है लेकिन दलित स्त्रियों के लिए उतना स्पेस नहीं मिला है। उनके द्वारा बनाए गए संगठन भी नहीं है और अगर हैं तो ठीक से काम नहीं कर पा रहे हैं। दलित साहित्य के समाजशास्त्र को बिना महिलाओं के समझा ही नहीं जा सकता- बाबा साहब आंबेडकर स्त्रियों का बहुत सम्मान करते थे। इस प्रकार देखें तो दलित कहानियों ने मात्र 20-25 वर्ष में ही साहित्य में अपना सम्मानजनक स्थान बना लिया है। दलित साहित्यकारों ने अपनी कहनियों में दलित जीवन की बुनियादी समस्याओं को मज़बूती से उठाते हुए उनके अधिकार और अस्मिता के प्रश्नों को भी प्रासंगिक बनाया है।

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 3, Issue 3, March 2016

आज जिस मात्रा में दलित साहित्य लिखा जा रहा है भविष्य में उसका स्वतंत्र इतिहास लिखने की आवश्यकता होगी। दलित साहित्य का सम्पूर्ण इतिहास ही उसे सही दिशा में ले जा सकता है। महिला भागीदारी को बढ़ाना बहुत आवश्यक है तभी दलित साहित्य अपने सामाजिक सरोकारों को सही मायनों में प्रस्तुत कर पाएगा। [23]

भारत में दलित साहित्य की गूँज छठे दशक से सुनाई देने लगी। दलित स्वर अब समस्त समाज को अपनी वाणी से परिचालित और उद्वेलित कर रहा है। आज़ादी के पश्चात् नया संविधन 1950 में लागू हुआ और लोकतंत्र की स्थापना हुई। लोकतंत्र के अंतर्गत धर्म, जाति, लिंग और वर्ण से परे समतामूलक समाज के निर्माण और सामाजिक न्याय तक प्रत्येक भारतीय की पहुँच की आकांक्षा के साथ दलितों के मसीहा डॉ. भीमराव आम्बेडकर के नेतृत्व में नए भारत के लिए नए संविधान का निर्माण और इसके साथ ही एक नए युग का सूत्रपात हुआ। देखा जाए तो बीसवीं सदी के पूर्वोत्तर में भारतीय राजनीति के मंच पर सक्रिय भूमिका में डॉ. आम्बेडकर ने पहली बार समाज के एक बड़े हिस्से की लड़ाई की शुरुआत की जो दलित था, शूद्र था, अस्पृश्य था, दास की भूमिका में अमानवीय स्थितियों में जीने के लिए अभिशापित था। सामाजिक स्तर पर पूरे दलित समाज को पहली बार डॉ. आम्बेडकर ने उद्वेलित किया और उसे आंदोलनकारी भूमिका प्रदान की। बाबा साहेब ने नारा दिया था शिक्षित बनो, संघर्ष करो और संगठित रहो- इस बोध वाक्य को दलित समाज ने अपने जीवन का मूलमंत्र बना लिया; संपूर्ण दलित साहित्य अपनी वैचारिक ऊर्जा अम्बेडकर से ही ग्रहण करता है। दलित साहित्य के समस्त विधाओं में दलितों की व्यथा कथा और अनुभवों का यथार्थ चित्रण है। [24]

आक्रोश और नकार दलित साहित्य के दो मुख्य मुद्दे है। सम्पूर्ण भारतीय दलित समाज की स्थिति एक जैसी है। उनके दुःख, संताप एक जैसे हैं और यही कारण है कि दलित लेखन भी अभिव्यक्ति के स्तर पर एक जैसा ही है। दलित लेखन को अगर देखा जाय तो इस क्षेत्र में काव्य सृजन अधिक हुआ है। कविताओं में, पीड़ा में डूबी भावनाओं और विरोध के रूप में प्रहारात्मक तर्क ने जनमानस को बहुत प्रभावित किया । गौरतलब है कि समस्त भारतीय कविता का मूल स्वर वर्णव्यवस्था से पीड़ित समुदाय की वेदना है, जिसकी जड़ में सदियों से सामाजिक न्याय से वंचित, अत्याचार और शोषण का इतिहास है। भारतीय दलित कविता वर्ण व्यवस्था की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक वर्चस्व के ख़िलाफ़ एक मोर्चा है। यह यातनाओं के अतीत के साथ समसामयिक जीवन और परिवेश से जुड़ने के कारण प्रासंगिक है - या यों कहें कि इसकी प्रासंगिकता और बढ़ गई है, नकार और विद्रोही स्वर के साथ-साथ परिवर्तन की तीव्र आकांक्षा को भी वाणी दे रही है।[25]

यूँ तो कविता का इतिहास वर्षों पुराना है। विविध छंदों से होती हुई छंद मुक्त हुई कविता के कई रंग देखे जा सकते हैं। आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक हिन्दी कविता ने कई रंग बिखेरे हैं। साहित्य और समाज का संबंध मनुष्यता के विस्तार के लिए हुआ है। साहित्य शब्द का प्रचलन सातवीं-आठवीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ। साहित्य का आरंभ "कविता" से हुआ। आरंभिक समय भारतीय साहित्य में कविता ही अभिव्यक्ति का माध्यम थी। साहित्यिक विधा के रूप में अन्य विधाओं का आगमन अभी नहीं हुआ था लिहाजा काव्य रूप को ही साहित्य माना गया। संस्कृत में साहित्य के स्थान पर 'काव्य' शब्द का प्रयोग मिलता है। उस समय के विख्यात आचार्यों ने साहित्य को अपनी मान्यता के अनुसार व्याख्यायित करने का प्रयास किया। भामह, राजशेखर, कुंतक आदि आचार्यों ने काव्य की परिभाषा देते हुए शब्द और अर्थ के तमाम पक्षों पर विचार किया, जिसमें शब्द और अर्थ का सहभाव ही 'काव्य' अथवा 'साहित्य' माना। कुछ समय बाद आपसी स्वीकृति और समझौते के बाद संस्कृत में भी साहित्य शब्द का प्रयोग होने लगा। आगे चलकर 'काव्य' शब्द 'साहित्य' शब्द के अर्थ में रूढ़ हो गया। आधुनिक काल में कविता ही मात्र अभिव्यक्ति का साधन नहीं रह गयी। साहित्यकारों और चिंतकों ने लेखन को आम जनता तक ले जाने के उद्देश्य से उसे विस्तारित और सरल किया। विस्तार की इसी प्रक्रिया में तमाम अन्य विधाओं का भी जन्म हुआ जिसमें नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध के साथ समीक्षा और आलोचना का भी विकास हुआ। इन तमाम विधाओं को 'साहित्य' कहने से कोई अवरोध नहीं दिखता। बल्कि कविता को साहित्य कहने से सीमित अर्थ की ध्वनि उत्पन्न होती है। साहित्य अन्य कलाओं से से अलग समाज से संबंध बनाने में अधिक प्रभावशाली है। समाज और साहित्य के बीच भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका है। बिना भाषा इस संबंध की कल्पना ही संभव नहीं है। जिस भाषा को प्रयोग करने वालों की संख्या जितनी कम होगी उसका साहित्य उतना ही कमज़ोर और सीमित होगा। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने साहित्य और समाज के संबंध को इन शब्दों में व्यक्त किया है- "साहित्य और जीवन का क्या संबंध है, यह प्रश्न है आज एक विशेष प्रयोजन से पूछा जाता है। वर्तमान भारतीय समाज एक ऐसी अवस्था पर पहुँच गया है जिसके आगे अज्ञात संभावनाएँ छिपी हुई हैं। विशेषतः हमारे शिक्षित नवयुवकों के लिए यह क्रांति की घड़ी है।"[13] महावीर प्रसाद द्विवेदी साहित्यिक परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन से जोड़ते हुए कहते हैं- "जिस जाति की सामाजिक अवस्था जैसी होती है, उसका साहित्य भी वैसा ही होता है। [26]जातियों की क्षमता और सजीवता यदि कहीं प्रत्यक्ष देखने को मिल सकती है, उसके साहित्य रूपी आईने में ही मिल सकती है। इस आईने के सामने जाते ही हमें तत्काल मालूम हो जाता है कि अमुक जाति के जीवन शक्ति इस समय कितनी या कैसी है और भूतकाल में कितनी और कैसी थी।[14]

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 3, Issue 3, March 2016

भारतीय समाज और साहित्य का गहरा सम्बन्ध हैं और दोनों एक दूसरे के पूरक है। साहित्य समाज आत्मा साहित्य है। साहित्य मानव मस्तिष्क से उत्पन्न होता है और मस्तिष्क वही ग्रहण करता है जो समाज से उसे प्राप्त होता है। साहित्य मनुष्य को मनुष्यता प्रदान करता है। मनुष्य न तो समाज से अलग हो सकता है और न साहित्य से। मनुष्य का पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा तथा जीवन निर्वहन भी समाज में ही होता है। व्यक्ति सामाजिक प्राणी बनकर अनेक अनुभव ग्रहण करता है, जब वह इन अनुभवों को शब्दों के माध्यम से व्यक्त करता है तो साहित्य का रूप बन जाता है। शब्दों की यही अभिव्यक्ति आदमी को श्रेष्ठ एवं साहित्यकार बना देती है। साहित्य के बिना राष्ट्र की सभ्यता और संस्कृति निर्जीव है। साहित्यकार का कर्म ही है कि वह ऐसे साहित्य का सृजन करे जो राष्ट्रीय एकता, मानवीय समानता, विश्व-बन्धुत्व के सदभाव के साथ हाशिये के आदमी के जीवन को ऊपर उठाने में उसकी मदद करे। साहित्य का आधार ही जीवन है। साहित्यकार समाज और अपने युग की को साथ लिए बिना रचना कर ही नहीं सकता है क्योंकि सच्चे साहित्यकार की दृष्टि में साहित्य ही अपने समाज के अस्मिता की पहचान होता है। भारत की आज़ादी के संग्राम के समय भारतीय समाज और साहित्य का पता दुनिया को हो चुका है। अंग्रेज़ों को देश छोड़कर भागना पड़ा, इसमें भारतीय समाज और साहित्य की बहुत बड़ी भूमिका रही। साहित्य मानव जीवन को परिवर्तन के साथ अन्य मानवजाति को जोड़ता भी है इसीलिये हमारे समाज में साहित्य, समाज का प्रतिबिम्ब माना जाता है। साहित्य बीते हुये कल का आईना है और भविष्य के जीवन को दिशा देने वाला भी है। सच्चा साहित्य कभी पुराना नहीं होता साहित्य जीवन के मूल्यों को प्रतिष्ठित करता है। वाल्मीकि, कालीदास, रविदास, सूरदास, तुलसीदास एवं आधुनिक युग के साहित्यकारों की रचनाएँ आज के पूँजीवादी और व्यावसायिक युग में भी आधुनिक समाज का दिशा निर्देशन करने में सक्षम हैं। [20]

आधुनिक भारतीय दलित कविता में आक्रोश और विद्रोह का स्वर सर्वप्रथम मराठी कविता में प्रस्फुटित होता है। उसके पश्चात् इसका प्रभाव भारत के सभी भाषा के दलित कविताओं और अन्य साहित्य पर पड़ता है। हालाँकि दलित कविता की धारा प्राचीन काल से ही सिद्ध और नाथ कवियों के रूप में मिलती है परन्तु मुखरता और प्रखरता आधुनिक काल के दलित कवियों में ज़्यादा परिलक्षित होती है। हिंदी दलित कविता का आरम्भ 'हीरा डोम' की कविता 'अछूत की शिकायत' से मानी जाती है जो 1914 में सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हुई। इस कविता में दलित समाज के जीवन-व्यथा, शोषण तथा अन्याय का चित्रण करते हुए कवि ने भगवान की महिमा पर भी प्रश्न-चिह्न लगाते हुए, ईश्वर की सत्ता का भी खंडन करता हुआ प्रतीत होता हैः-

'हमनी के राति दिन दुःखवा भोगत बानी,
हमनी के सहेबे से मिनती सुनाइब,
हमनी के दुख भगवनओं न देखताजे,
हमनी के कबले कलेसवा उठाइब'

जाति-व्यवस्था से ही जुड़ी हुई है शोषण की कहानी जिसके कारण दलितों को ग़रीबी और जहालत का जीवन जीने के लिए अभिशप्त होना पड़ता है। उन्हें ग़रीबी की बदबूदार गलियों से गुज़रना पड़ता है और अभावग्रस्त जीवन के दंश को झेलना और भोगना पड़ता है। दलित कवि समाज को अपनी कविताओं के माध्यम से दलित होने की पीड़ा से अवगत करता है। हाड़-तोड़ परिश्रम के बावजूद भी दलितों को न तो समाज में अधिकार प्राप्त है न ही पेट भर भोजन। ऐसे में व्यवस्था के प्रति विद्रोह का भाव और सामाजिक बनावट के प्रतिकार की भावना जागृत होना स्वाभाविक हैः-

हड्डियों को निचोड़कर
निकाला गया है तेल
किन्तु इतना याद रखें
जिस रोज इंकार कर दिया
दीया बनने से मेरे जिस्म ने
अँधेरे में खो जाओगे
हमेशा-हमेशा के लिए।'[22]

ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं- "दलित साहित्य में दलित जीवन का यथार्थवादी चित्रण यथार्थ की मात्र नकल नहीं है, बल्कि साधारण परिस्थितियों में साधारण चरित्रों का वास्तविक पुनर्सजन है। इस कार्य में दर्शन और कलात्मक पांडित्यपूर्ण प्रदर्शन की आवश्यकता कतई नहीं है। पाठक की चेतना और अनुभूति को प्रभावित करनेवाली गहन संवेदना से ही यह संभव है।"[15] भारतीय दलित कविता में इन्हीं संवेदनाओं और अनुभूतियों का अंकन और चित्रण हुआ है। दलित कवि लिखता हैः-

'हाथों में है अथाह शक्ति
सीने में है धैर्य
मन में है विश्वास

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 3, Issue 3, March 2016

फिर भी सही दुत्कार
नहीं बोये कांटे बांटे
सिर्फ़ सगुन प्यार के
फिर भी रहे अछूत।'16

अपने ही देश में अनजानेपन का दंश झेलता दलित एक लम्बे समय से अपनी अस्मिता की तलाश में भटक रहा है। कई पड़ाव इस दौरान पार किये हैं परन्तु मंज़िल अभी कोसों दूर है। परन्तु वह विश्वास से पूर्ण है कि वह अपने अस्तित्व की रक्षा कई संघर्षों के बावजूद भी करेगा और उसे मंज़िल मिलेगी इसके प्रति आशान्वित भी है।

भारतीय दलित कविता समस्त दलितों, पूरब से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण की पुकार है, जिसमें दलितों के शोषण, ग़रीबी और जहालत के साथ ही परिवर्तन की परिस्थितियों को वाणी दी गयी है। आधुनिक दलित कविता की धरा मराठी से प्रस्फुटित होती हुई गुजराती, पंजाबी, उड़िया, कन्नड़ तथा हिंदी तक व्याप्त होती जा रही है। दलितों की स्थिति भारत के प्रत्येक भू-भाग में एक जैसी है, ज़ाहिर है कि उनका स्वर भी एक जैसा होगा चाहे वे दया पवार हों, या पंजाबी के गुरुदास राम 'आलम' हों या फिर उड़िया के विचित्राचंद नायक हों या गुजराती के मंगल परमार या हिंदी के ओमप्रकाश वाल्मीकि हों। समस्त भारतीय दलित आगे बढ़ रहे हैं। सदियों से प्रचलित परम्परा और विचारधारा का खुलकर विरोध करना ही दलित कविता का उद्देश्य है। ये कविताएँ दलितों के पीड़ा और उनके साथ हुए अन्याय का दस्तावेज़ हैं। वह न्याय जो इन्हें सदियों से नहीं मिला, मानव होने के बावजूद भी मानव के अधिकारों से इन्हें दूर रखा गया। यही भावबोध की क्षमता और कटु अनुभूतियों की प्रमाणिकता ही दलितों को न्याय दिलाएगी। इतिहास में जिसकी सूरत दिखाई नहीं देती, उसी सूरत की खोज करती हैं ये कविताएँ। ये अस्मिता की पहचान का दस्तावेज़ हैं और प्रासंगिक भी हैं। भारत महाशक्ति तभी बन सकता जब भारतीय समाज का यह बड़ा तबक़ा जिसे हाशिये पर रखा गया है, उसे मुख्यधारा में समावेशित किया जाएगा और वो भी उसके पूरे अधिकारों के साथ अपनी विशिष्ट भाषाई दक्षता के साथ दलित कविता अपने आप में सशक्त साहित्य है जो जनमानस के मस्तिष्क के तार को झंकृत करता है और सोचने पर विवश करता है और यही उसकी सफलता है और यही भारतीय दलित कविता की प्रासंगिकता भी है।[24]

समग्रता में देखें तो हिन्दी में दलित साहित्य का आना उसके लिए सुखद ही रहा क्योंकि यह सच है कि हिन्दी साहित्य से जुड़ते ही दलित साहित्य व्यापक स्तर पर चर्चित हुआ जिसकी पहुँच बड़ी है। दलित साहित्यकार भाषा में चमत्कार दिखाने के लिए नहीं लिखता न ही किसी को ख़ुश करने के लिए बल्कि वह लिखता है अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति के लिए। पाठक इसीलिए उससे जुड़ भी जाता है क्योंकि उसे दलित साहित्य की संवेदना झूठी नहीं लगती है। उसमें छुपे सत्य को वह महसूसता है और उसे आत्मसात करता है। आज दलित विमर्श विश्व स्तर का मुद्दा है तो उसमें सिर्फ़ दलितों की मेहनत और दृष्टि है।

विचार-विमर्श

भारत की स्वतंत्राता के बाद देश के दलित समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन आया - स्वतंत्राता , शिक्षा , आरक्षण , संवैधानिक संरक्षण , जातिगत भेद - भाव पर दंड की व्यवस्था तथा दलित समाज में बुद्धिजीवी वर्ग का उदय , और प्रशासन , राजनीति , शिक्षा आदि में भागीदारी। इसके बावजूद देश में जातिगत भेदभाव की घटनाएं होती रहीं और अस्पृश्यता एवं दमन से देश पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाया।
आज का दलित - विमर्श एक तरह से दलित लेखकों तक सीमित होता जा रहा है। दलित लेखक ही असली दलित साहित्य की रचना करते हैं , उनका साहित्य स्वानुभूति का है और परानुभूति कासाहित्य उनका साहित्य नहीं है , दलित साहित्य की कोई परंपरा नहीं है , दलित साहित्य स्वायत्त हैऔर उसका साहित्य - दर्शन अलग है और साहित्य की मुख्य धारा से उसका कोई संबंध नहीं है। ऐसेही कुछ विचार और तर्क वर्तमान दलित - विमर्श में सुनाई पड़ते हैं , लेकिन गैर दलितों के सहानुभूतिपूर्ण दलित साहित्य को दलित - विमर्श में स्थान न देने से देश के एक बहुत बड़े हिंदू समाजको काटकर अलग कर देना विमर्श की शक्ति और उसकी व्यापकता को कम करना है। दलितलेखकों को यह समझना चाहिए कि इस नीति से उनका पाठक वर्ग कम होता जाएगा और एकबड़े वर्ग के लेखकों की सहानुभूति के कम होने का भी भय बना रहेगा। दलित लेखकों को यह पूरी स्वतंत्रता है कि वे प्रेमचंद के दलित - चिंतन को चुनौती दें , उसकी आलोचना करें , क्योंकि साहित्यका लोकतंत्र सबके लिए खुला है [26], लेकिन उन्हें प्रेमचंद के समय तथा परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना चाहिए। गांधी ने ' हरिजन ' नाम से अखबार शुरू किया था , लेकिन अब जाति - विशेष के लिए ' हरिजन ' शब्द का प्रयोग वर्जित है , लेकिन आज

IJMRSETM

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 3, Issue 3, March 2016

हम गांधी को इसके लिए अपराधी नहीं बना सकते। गांधी के समय में 'हरिजन' शब्द आदरसूचक था, अर्थात् हरि का जन, ईश्वर का जन। आज 'दलित' शब्द पर कोई आपत्ति नहीं है, किंतु यह संभव है कि कल इसे आपत्तिजनक मान लिया जाए। 'दलित' शब्द को स्वामी विवेकानंद, गांधी, प्रेमचंद आदि ने केवल अस्पृश्य जातियों तक सीमित नहीं कियाथा।आधुनिक हिन्दी साहित्य के इतिहास में और वह भी पराधीन भारत में, प्रेमचंद पहले ऐसे कथाकार हैं जिन्होंने दलितों के हजारों वर्षों से चली आई यातना, दमन तथा क्रूर मानवीय भेदभाव एवं अपमान का दंश अनुभव किया और फिर भी अपनी मनुष्यता को मरने नहीं दिया। स्वामी विवेकानंद ने इन शूद्र जातियों की यातना एवं मनुष्यता दोनों का उजागार किया और प्रेमचंद ने भीउनके मार्ग का अनुसरण किया और अपने उपन्यासों एवं कहानियों के द्वारा दलित-विमर्श का एक समानुकूल आधुनिक रूप प्रस्तुत किया। उनके विचारों को हम देख चुके हैं, परंतु उनके साहित्य मेंभी दलित-चेतना एक प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में दिखाई देती है। जहां तक उपन्यासों का संबंध है, उनके 'रंगभूमि' तथा 'गोदान' उपन्यास में कुछ ऐसे पात्रा तथा प्रसंग हैं जो परानुभूति के बावजूद दलित साहित्य के बड़े कथाकार के रूप में हमारे सामने आते हैं। 'रंगभूमि' उनका महाकाव्यात्मक उपन्यास है और उसका नायक सूरदास दलित जाति का है। दलित लेखकों को यह आपत्ति रही कि सूरदासको दलित बनाकर, उसे अंधा दिखाकर प्रेमचंद ने दलित जाति का अपमान लिया है।[21] इन्हीं कुछ कारणों से दलित लेखकों ने 'रंगभूमि' को जलाया तथा पाठ्यक्रम से हटाने का आंदोलन चलाया, लेकिन वे ऐसा कोई प्रबल तर्क नहीं दे पाए जिससे दलित को अंधा नायक बनाने से दलित जातिका अपमान हुआ हो, बल्कि सच यह है कि सूरदास ने दलित जाति का गौरव बढ़ाया। दलित साहित्य की अवधारणा को लेकर लंबी बहसें चल रही थी। यह सवाल दलित साहित्य में प्रमुखता से छाया रहा कि दलित साहित्य कौन लिख सकता है, यानी स्वानुभूति ही प्रामाणिक होगी या सहानुभूति को भी स्थान मिलेगा। प्रमुख दलित साहित्यकारों ने कहा चूंकि सवर्णों ने दलितों की पीड़ा को भोगा नहीं, इसलिए वे दलित साहित्य नहीं लिख सकते। हालांकि यह मत ज्यादा दिनों तक टिका नहीं, लेकिन आरंभ में यह बहस का मुद्दा बना रहा। प्रोफ़ेसरचौथी रामयादव के अनुसार – हिंदी पट्टी में जो नवजागरण आया उसमें साम्राज्यवाद विरोधी राष्ट्रीय जागरण के साथ ही सामंतवाद विरोधी दलित जागरण के स्वर भी प्रस्फुटित हुए थे, जिसकी कोई नोटिस ही नहीं ली गई। एक समय भारत में स्वामी अछूतानन्द हरिहर के दलित आंदोलन की बड़ी धूम थी। स्वामी जी की कविताएँ दलित समाज में आत्मसम्मान और आत्मगौरव का बोध जगा रही थीं। इनकी कृतियों में मायानन्द बलिदान, रामराज्य न्याय, आदिवंश का डंका आदि ऐसी महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं जिनका दलित समुदाय पर बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा था। अछूतानन्द से प्रभावित दलित कवियों की एक पूरी शृंखला मिलती है जिसमें दर्जनों कवि कविताएं लिख रहे थे, उनमें जनकवि बिहारी लाल हरित सबसे प्रखर और लोकप्रिय कवि थे। दलित साहित्य एक साहित्यिक आंदोलन है जिसमें प्रमुखता से दलित समाज में पैदा हुए रचनाकारों ने हिस्सा लिया और इसे अलग धारा मनवाने के लिए संघर्ष किया।[23]

परिणाम

प्रेमचन्द एक प्रसिद्ध कहानीकार एवं लेखक थे। उन्होंने अपने लेखन कार्य के माध्यम से भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं को उजागर किया है और यह इसलिए मुमकिन हो पाया क्योंकि वे भारतीय संस्कृति को बड़ी गहराई से जानते थे। उन्होंने भारतीय संस्कृति की उस सच्चाई को उजागर किया जिसे लोग जानते हुए भी अन्जान बन रहे थे। इस बारे शिवकुमार मिश्र का मत है कि - "प्रेमचन्द जब कथा के मंच पर आये, भारत की अपनी कथा परम्परा से तो परिचित थे ही, उर्दू और अरबी-फारसी के किस्सों और अफसानों की भी उनको पूरी जानकारी थी। पश्चिम के कथा लेखकों को भी उन्होंने पढ़ा था। बावजूद इसके उनकी रचनाएं कथा लेखन के किसी निश्चित रूप में ढलने के बजाय अभिव्यक्ति के उनके अपने दृष्टिकोण की अनुरूपता में सामने आई, कि कहानी को पारदर्शी होना चाहिए, वह सारगर्भित हो और अपने संवेदनात्मक उद्देश्य को पाठक तक भली भाँति संप्रेषित कर पाने में समर्थ हो।" [2] डॉ. रामविलास शर्मा ने प्रेमचंद के कहानी कहने के ढंग पर विचार करते हुए लिखा है कि - "कहानी फुरसत की चीज है, काम धाम से छुट्टी पाकर सुनने की चीज है। और जल्दबाजी से काम बिगड़ जाता हैं। प्रेमचन्द कहानी सुनाते है, अक्सर लच्छेदार जबान में, वाक्यों को स्वाभाविक गति से फैलाने की आजादी देकर। अंग्रेजी बाग के माली की तरह उनकी डालियाँ और पत्ते कतर कर नहीं; फूलों और पत्तियों को हवा में बढ़ने और लहराने की आजादी देकर। जिन्दगी के अनुभवों पर टीका-टिप्पणी भी साथ में चला करती है[25], व्यंग्य, अनूठी उपमाएं और हास्य बीच-बीच में पाठक को गुदगुदाते रहतें हैं।" नवजागृति शब्द को अंग्रेजी में 'रेनेसा' कहा जाता है। रेनेसा या रिनेसांस' फ्रेन्च

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 3, Issue 3, March 2016

शब्द है जिसका अर्थ पुनर्जन्म (Rebirth) होता है। "रिनेसांस शब्द फ्रांसीसी इतिहासकार मिशले (1798-1874 ई.) ने गढ़ा था और बुर्कहार्ट (1818-1897 ई.) द्वारा वह ऐतिहासिक अवधारणा में विकसित हुआ।" [1] प्राचीन ग्रीक, रोमन साहित्य एवं संस्कृति का पुनर्जन्म यानी नवजागृति ऐसा अर्थ माना जाता है। वैसे यह पूर्ण सच नहीं है। "रिनेसांस' शब्द का अर्थ समय-समय पर परिवर्तन होता है। 16 वीं सदी के निकट इसका अर्थ था लैटिन और ग्रीक साहित्य का पुनरुथान। इटली निवासी इस आंदोलन को 'रिनेसिमेन्टो' या क्लासिकी भाषाओं और साहित्य का 'पुनर्जन्म' कहते हैं। यह विद्या या कला का 'पुनर्जन्म' या 'पुनरुत्थान' मध्ययुग और आधुनिक काल को अलग करने के लिए कल्पित किया गया था।" नवजागृति से मानवता का मूल्य बढ़ा और हर क्षेत्र में विकास तेजी से होने लगा। यानी हम यह कह सकते हैं कि प्राचीन काल में विद्या, कला, साहित्य एवं संस्कार के पुनर्जन्म के आन्दोलन को नवजागृति के नाम से पहचाना जाता हैं।[26]

भारत में शताब्दियों से अनेक परिवर्तन आये। पहले जब भारत में आर्यों का शासन था तब प्रजा धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक रूप से समृद्ध थी लेकिन मुस्लिमों ने जब भारत पर चढ़ाई की तब भारत में राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक रूप से अंधकार फैल गया था। राजनैतिक पराधीनता ने भारतवासियों को दुर्बलता, दरिद्रता, हीन-भावना और अन्य विकारों से ग्रस्त कर रखा था। पाश्चात्य संस्कृति तथा सभ्यता के साथ हुआ यह साक्षात्कार भारतीय समाज के लिए एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना थी। कुछ सौ साल पहले मुगलों का आगमन हुआ था, पर वह लगभग आत्मसात हो चुका था। वे यहाँ लूटने आये थे, लेकिन वे लुटेरे से धीरे-धीरे शासक बन गये और बाद में यहीं के होकर रह गये।

इसी सन्दर्भ में भवानीलाल भारतीय का मत है कि- "विदेशी शासन से उत्पन्न भाव ने भारत के विशाल हिन्दू समाज के धार्मिक आध्यात्मिक तथा नैतिक मूल्यों को अपूरणीय क्षति पहुँचाई थी। सहस्राब्दियों पूर्व के वैदिक औपनिषदिक तथा रामायण एवं महाभारतकालीन समाज में लोगों की इहलोक एवं परलोक के प्रति जो स्वस्थ दृष्टि थी वह तो अतीत की वस्तु हो ही गई थी, मौर्य और गुप्तयुगीन समृद्धि तथा वैभव तत्कालीन लोगों की कलात्मक अभिरुचि, साहित्य, संगीत, काव्य तथा स्थापत्य के क्षेत्र की बढ़ती उपलब्धियाँ भी इतिहास की कहानियाँ बनकर रह गई। उस युग में बृहत्तर भारत का जैसा मानचित्र उभरकर आया और पूर्व के समुद्रपारीय देशों पर भारत की सांस्कृतिक विजय ने जैसी छाप छोड़ी वह सब अतीत की वस्तु बन गई थी। धर्म समाज तथा देश के सामान्य जनजीवन पर पराधीनता की काली घटाओं ने आपत्ति,, विपत्ति, शोषण और अभिशापों की जैसी उपल वृष्टि की, उससे लोगों के दुख और कष्ट बढ़े।"[11]

इस समय लोग आर्थिक रूप से इतने पराधीन हो गये थे कि गरीब और गरीब होने लगे थे और किसान मजदूर बनने लगे थे। गृह उद्योग, कुटीर उद्योग, खेती आदि नष्ट हो गये थे। अंग्रेजों का जुल्म दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा था। राज तो अंग्रेजों ने पहले ही ले लिया था बाद में उन लोगों ने व्यापार में भी अपनी मनमानी चलाई। परिणाम स्वरूप भारतीय जनता गरीब बनती गई और अंग्रेज और धनवान बनते गये। आर्थिक, राजनैतिक रूप से तो हम खत्म हो ही गये थे लेकिन धार्मिक रूप से भी हमारे धर्मगुरुओं ने भारतीय संस्कृति की जड़ को खोखला कर दिया था।

"भारत के लोग यह जानते थे कि उनका पतन क्यों हो सकता है। साक्षरता विवेक की रचना में सहायिका हो सकती है किंतु निरक्षर भी विवेकशील हो सकता है और उसका विवेक अधिक प्रभावपूर्ण और प्रभावशाली हो सकता है, लोग साक्षर भले ही न हों पर सदा से विवेकी रहे हैं और मूल्यों का मर्म समझते हैं। केवल आर्थिक और काम जगत के मूल्य उनके नियामक नहीं रहे हैं अपितु वे इनका संचालन भी धर्म और मुक्ति की दृष्टि से करते हैं। पुरुषार्थ चतुष्टय का योग ही भारत की कर्मभूमि की पीठिका का आधार स्तंभ है। तब तक सिद्धि की परिकल्पना भारत की मनीषा नहीं कर सकती जब तक की इन चारों की यौगिक उत्पत्ति से जीवन का संचालन न हो। फूट, परस्पर द्वेष, घृणा, सत्ता का लोभ, ज्ञान, विज्ञान की कमी भारत के पराभव का कारण बनी थी और उन्होंने ऐसी प्रथाओं को जन्म दिया था जिनके कारण देश पराभूत हुआ था। इनके मर्म के अंतर तक भारत की मनीषा

IJMRSETM

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 3, Issue 3, March 2016

पहुँच चुकी थी और यह देश अपने इन मूल्यों की स्थापना के लिए व्याकुल था जिनके कारण यह मुक्त और विराट रहा है। सन् 1857 के विप्लव ने उन मूल्यों की पुनर्स्थापना के लिए राष्ट्रीय मंच की नींव रखी।

'नवजागरण' जिसका दूसरा नाम 'पुनर्जागरण' है। इटली, फ्रांस और यूरोप में इसे 'रिनेसांस' कहते हैं। यूरोप में इसकी शुरुआत 13 वीं 14 वीं शताब्दी में हो गई थी। जब हमारे देश में 'लोकजागरण' हुआ था। 'नवजागरण' की शुरुआत 1857 के युद्ध के बाद हुई। वह 19 वीं सदी थी। 14 वीं सदी में लोगों ने एक बार भक्ति आंदोलन के माध्यम से जागृति मिल चुकी थी। इसलिए 19 वीं सदी में जब राजनैतिक क्रान्ति के माध्यम से लोगों में जागृतता सुसुप्त हो चुकी थी वह फिर से जाग उठी। इसलिए इसे नवजागरण काल या पुनर्जागरण काल कहा गया। मध्यकाल जो अपने अवरोध, जड़ता और रूढ़िवादिता के कारण स्थिर और एकरस हो चुका था, वह एक विशिष्ट ऐतिहासिक प्रक्रिया, जो 1857 के विप्लव से उत्पन्न हुई नवजागरण की प्रक्रिया है उसने उसे पुनः गत्यात्मक बनाया। इसी के साथ ही आधुनिक काल का प्रारम्भ माना जाता है।[13] डॉनगेन्द्र ने अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'आधुनिक' शब्द के दो अर्थ बताए हैं।" मध्यकाल से भिन्नता और नवीन इहलौकिक दृष्टिकोण" 63 यानी कि आधुनिक काल में मध्यकाल से भिन्न प्रवृत्तियाँ थीं। यहाँ लोगों में जागृति का संचय हुआ था। दार्शनिक चिन्तकों तथा धार्मिक व्यख्याताओं का आविर्भाव हुआ। इस काल में पाश्चात्य संस्कृति का एक बड़ा उत्साह पूरे भारत में फैल गया। अंग्रेजाी शिक्षण का प्रचार होने लगा, इसी समय 'मशीनयुग' का आरम्भ हुआ। अंग्रेजों ने अपनी सहूलियतों के लिए और अपनी उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए कई नई मशीनों की स्थापना करखानों में की। इसी युग में प्रेस, डाक, टेलीफोन, टेलीग्राफ की शुरुआत हुई। रेलवे, बस, मोटर की शुरुआत हुई इसी समय में राजाराम मोहनराय , स्वामी दयानंद आदि समाज सुधारकों ने भारतीय समाज की कुरीतियों जैसे सतीप्रथा, बालविवाह आदि को दूर करने का बीड़ा उठाया और शिक्षा आदि को आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया। हमारा देश इस समय तक पूरा जागृत हो गया था इसलिए वे स्वतंत्रता के क्षेत्र में आगे बढ़ रहा था। पूरे देश को इस स्वतंत्रता के लिए एक जुट करना जरूरी था इसलिए भारतीयों ने अंग्रेजी मशीनों का फायदा उठाया और हर एक क्षेत्र की जन भाषाओं में लोगों के समाचार पत्र द्वारा संदेश भेजने लगे। इसी समय हमारे साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से लोगो में जागृति लाने की कोशिश करने लगे। इसी जागृति की वजह से हमारे देश को आजादी मिली।[15]

'नवजागृति' के आविभार्व से देश के हरेक क्षेत्र में परिवर्तन आने लगा, जिसकी चर्चा हम ऊपर कर आए है। इस परिवर्तन के साथ समाज के लोगों और उनकी सोच में भी परिवर्तन आया। जिसने मध्यकाल की रूढ़ि चुस्तता को खत्म करके आधुनिकता को जन्म दिया। अर्थात् हम यह कह सकते हैं कि नवजागृति या नवजागरण या पुनर्जागरण ही आधुनिक काल का जन्म दाता है। साहित्य समाज का दर्पण है इसलिए समाज में होने वाले हर परिवर्तन की असर साहित्य में जरूर होती है। पाश्चात्य संस्कृति के मेल, विविध मशीनों की उपलब्धि तथा हमारे देश की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं आर्थिक परिस्थिति के कारण हिन्दी साहित्य में अनेक विधाओं का जन्म हुआ।

प्रेमचंदजी के कथा साहित्य में मध्यमवर्ग की दयनीय स्थिति का हृदयस्पर्शी यथार्थोन्मुखी चित्रण मिलता है। प्रेमचंद के दलित समाज पर गंभीरतापूर्वक विचार किया और उनके विचार 'प्रेमचंदः विविध - प्रसंग', (संपादक : अमृतराय) में 'छूत - अछूत' शीर्षक संकलित हैं। ये सभीविचार टिप्पणियों के रूप में 19 दिसंबर, 1932 से 14 मई, 1934 तक 'जागरण' साप्ताहिक में प्रकाशित हुए थे। इनटिप्पणियों में प्रेमचंद गांधी के साथ - साथ चलते हैं और अपने दलित - चेतना के कुछ सूत्रा प्रस्तुत करतेहैं। प्रेमचंद मंदिर प्रवेश के प्रसंग को उठाते हैं जो गांधी के अछूतोद्धार आंदोलन का एक प्रमुख कार्यथा। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में भारतीय समाज की कुरीतियों का बखूबी प्रतिपादन किया है। प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में उस समय के वास्तविक भारत को अपने पात्रों एवं संवादों के माध्यम से सही मायने में चरितार्थ किया है। प्रेमचंदजी गाँधीजी से प्रभावित थे, इसके साथ - साथ वे भारत के किसानों एवं दलितों पर हो रहे अत्याचार के खिलाफ थे।[17]

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 3, Issue 3, March 2016

प्रमुख दलित उपन्यास और उपन्यासकार

क्र. सं	दलित उपन्यास	उपन्यासकार	वर्ष
1.	बंधन मुक्ति	रामजी लाल सहाय	1954ई. (पहला दलित उपन्यास)
2.	मानव की परख	देवीलाल सेन	1959 ई.
3.	धरती धन न अपना	जगदीश चन्द्र	1972 ई.
4.	क्रांति के पुजारी	सी. बी. भारती	1973 ई.
5.	अमर ज्योति	डी. पी. वरुण	19 82 ई.
6.	करुणा	जय प्रकाश कर्दम	1986ई.
7.	श्मशान का रहस्य	जय प्रकाश कर्दम	1991 ई.
8.	छप्पर	जय प्रकाश कर्दम	1994 ई.
9.	धापोदाईद	बाबूलाल खांडा	1988 ई.
10.	क्या मुझे खरीदोगे	मोहनदास नेमिषराय	1990 ई.
11.	मुक्तिपर्व	मोहनदास नेमिषराय	1999 ई.
12.	वीरांगना झलकारी बाई	मोहनदास नेमिषराय	2003 ई.
13.	आज बाजार बंद है	मोहनदास नेमिषराय	2004 ई.
14.	जख्म हमारे	मोहनदास नेमिषराय	2011 ई
15.	महानायक बाबा डॉ अंबेडकर	मोहनदास नेमिषराय	2013 ई
16.	पहल ख़त	डॉ धर्मवीर	1991 ई.
17.	मिट्टी की सौगंध	प्रेम कपाडिया	1995 ई.
18.	जसतस भई सबेर	सत्यप्रकाश	1995 ई.
19.	सिर्फ काँटे नहीं	श्यामलाल राही	1995 ई.
क्र. सं	दलित उपन्यास	उपन्यासकार	वर्ष
20.	मोरी की ईट	मदन दीक्षित	1996 ई.
21.	सफ़ेद चादर	जियालाल आर्य	1999 ई.

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 3, Issue 3, March 2016

22.	हिडिम्बा	एस. आर. हरनोट	2000 ई.	
23.	गाँव का कुआँ	के. नाथ	2000 ई.	
24.	पलायन	के. नाथ	2006 ई.	
25.	हिस्से की रोटी	डॉ शत्रुघ्न	2001ई.	
26.	संपूर्ण क्रांति	बलवंत सिंह	2001 ई.	
27.	उस शहर तक	तेजिंदर के	2003 ई.	
28.	हैलो सुजीत	तेजिंदर के	2007 ई.	
29.	आक्रोस	रघुवीर सिंह	2004 ई.	
30.	दलित दहन	एस. के. पंजम	2006 ई.	
31.	ग़दर जारी रहेगा	एस. के. पंजम	2011 ई.	
32.	मेहनत रंग लाई	हरिसिंह पाल	2012 ई.	
33.	सुअरदान	रूपनारायण सोनकर	2010 ई.	
34.	एक कस्बे के नोट्स	निलेश रघुवंशी	2012 ई.	
35.	एक सुबह यह भी	विपिन बिहारी	2012 ई.	
36.	भँवर	कैलाश चंद चौहान	2013 ई.	
37.	दलित	विजय सौदाई	2013 ई.	
38.	तुम्हें बदलना ही होगा	सुशीला टाकभौरे	2015 ई.	

दलित विमर्श से संबंधित प्रमुख नाटक:

क्र. सं	दलित नाटक	नाटककार	वर्ष
1.	अछूतों का इंसान	नंद जयसवा वियोगी	1943 ई
2.	वीर संत माया	पेरियारललई	1960 ई.
3.	गुरु दक्षिणा	बिहारी लाल	1969 ई.
4.	अछूत का बेटा	माता प्रसाद	1973 ई.

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 3, Issue 3, March 2016

5.	हीरे की पहचान	आर. बी. त्रिशरण	1983 ई.
6.	अछूत वीरांगना	राजवैद माताप्रसाद	1987 ई.
7.	अदालत नाम	मोहनदास नेमिषराय	1989 ई.
8.	सिंह विजय	राहुल कात्यायन	1991 ई.
9.	अंगुलिमाल	बुद्धि सागर	1996 ई.
10.	देवता	विक्रम प्रसाद	1997 ई.
11.	विषधर	रूप नारायण सोनकर	1999 ई.
12.	प्रतिशोध	माताप्रसाद	2000 ई.
13.	हैलो कामरेड	मोहनदास नेमिषराय	2001 ई.
14.	छू नहीं सकता	सूरज पाल चौहान	2001 ई.
15.	एक दलित डिप्टी कलेक्टर	रूपनारायण सोनकर	2001 ई.
16.	धर्म परिवर्तन	माताप्रसाद	2001 ई.
17.	आम्रपाली	के. नाथ	2002 ई.
18.	कठौती में गंगा	डॉ. एन. सिंह	2003 ई.
19.	नंगा सत्य	रूपनारायण सोनकर	2007 ई.
20.	अंगूठा एकलव्य का	रामनारायण सिंह राणा	2008 ई.
21.	बीमा	रतन कुमार सांभरिया	2014 ई.
22.	उजास	रतन कुमार सांभरिया	2014 ई.
23.	उजास	रतन कुमार सांभरिया	2014 ई.

अंग्रेजों के भारत पर आधिपत्य ने भारतीयों के प्रमोद और जड़ता को तोड़ दिया। उन्होंने गुलामी की छटपटाहट को अनुभव किया और देश को आजाद कराने के लिए करवट बदली। परिणाम स्वरूप जीवन संघर्ष बढ़ा और साथ ही साथ जातीय जीवन की भी जागृति हुई। भारतवासी संगठित होकर स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। तभी से नवजागरण की शुरुआत हुई मानी जाती है। सही मायने मे 1857 के गदर के बाद ही भारत में नवजागरण की शुरुआत हुई। भारतवासियों में नवजागृति का संचय होने के बावजूद कई परिवर्तन आए। यह परिवर्तन किन्हीं एक क्षेत्र में नहीं बल्कि समाज के हर क्षेत्र में आया, चाहे वह क्षेत्र धार्मिक, राजनैतिक या फिर सामाजिक ही क्यों न हो।[19]

'दलित' में अस्पृश्य जातियां तो थी हीं, पर उसमें वे सब नीच जातियां भी थीं जो जुलाहा, धोबी, दलित, गड़रिया, महरी, सपेरा, माली, मदारी, भुनगी, पासी, कंजड़ आदि जातियों के रूप में जानी

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 3, Issue 3, March 2016

जातीथीं। 'दलित' का अर्थ है - जो जीवन में जाति, धर्म, अर्थ, व्यवसाय आदि सभी दृष्टि से दलित है, पिछड़ा है, दमित है, निरक्षर और निर्धन है तथा उच्च वर्णों की सेवा जिसका धर्म है, जो शूद्र जाति - वर्गसम्मिलित किया जाता है। इस दलित समाज की जागृति एवं उत्थान के लिए दलित लेखक साहित्यकी रचना कर रहे हैं, अपने अनुभूत सत्यों को रचना में बड़ी यथार्थता के साथ उद्घाटित कर रहे हैं, और कुछ गैर दलित लेखक परानुभूति के आधार पर ही सही, दलित - यातना का एक नई दृष्टि से चित्राण कर रहे हैं तो इससे दलित - विमर्श को शक्ति एवं व्यापकता मिलेगी और जातिवाद की क्रूरताओं तथा दमन - शोषण के कुछ नए चेहरे भी सामने आएंगे। दलित लेखक यदि जातिवाद करना चाहते हैं तो गैर दलित लेखकों के बहिष्कार एवं उपेक्षा से उनके लक्ष्य की सिद्धि में कमजोरी आएगी तथा दलित साहित्य के प्रति शंका उत्पन्न होगी। गैर - दलित लेखकों कासाहित्य - प्रेमचंद और निराला का साहित्य, दलित - विमर्श को पूर्ण बनाता है तथा 'द्विज साहित्य' तथा 'दलित साहित्य' के विभाजन को साहित्य की मूल आत्मा के विरुद्ध मानता है। दलित - विमर्श में 'स्वानुभूति' एवं 'परानुभूति' की दो आंखें हैं, दो अनुभूतियां हैं जो दलित - विमर्श में एकाकार हो जातीहैं और उसे ठोस एवं समग्र रूप प्रदान करती हैं।[20]

निष्कर्ष

आर्थिक क्षेत्र के अन्तर्गत खेती में सुधार हुआ। जो पहले हल एवं अन्य उपकरणों से खेती होती थी वहाँ आज नये उपकरणों एवं पद्धतियों का इस्तेमाल होने लगा है, आधुनिक वाहन व्यवहार का विकास हुआ। रेल्वे बस व्यवहार आदि की शुरुआत हो गई। जिससे उद्योग धंधे को काफी फायदा हुआ और माल का आयात - निर्यात होने लगा। आधुनिक उद्योगों का विकास होने लगा। वाहन व्यवहार तथा संदेश व्यवहार ने आधुनिक उद्योगों के विकास में काफी योगदान किया। जिसकी वजह से आर्थिक क्षेत्र में प्रगति हुई। उसमें प्रेस तथा पत्र व्यवहार, डाक, तार और टेलीफोन ने 'सोने में सुहागा' का कार्य किया।[12]

सामाजिक क्षेत्र में लोगों में जागृति लाने के लिए कई संस्थाओं की स्थापना हुई जैसे ब्रह्मसमाज, आर्य समाज, रामकृष्ण - मिशन, थियोसॉफिकल सोसायटी, वेद समाज आदि मुख्य हैं। जिन्होंने समाज में चल रही कुरीतियों जैसे कि सती प्रथा, बाल - विवाह, बालकी को दूध पीती करने का रिवाज, विधवा - विवाह, ऊंच - नीच के भेद - भाव, नारी स्वतंत्रता, नारी - अधिकार, नारी - शिक्षा, नारी उद्धार का विरोध आदि समाज की संकीर्णताओं का विरोध, परम्परावादिता का विरोध आदि समाज की अनेक कुरीतियों का विरोध करके समाज में सुधार लाने का प्रयास किया गया जिसके परिणाम स्वरूप नवजागरण का फैलाव हुआ।

धार्मिक क्षेत्र में कई परिवर्तन आए जैसे एकेश्वरवाद का प्रतिपादन और बहुदेववाद का खण्डन, मूर्तिपूजा और बालप्रथा का विरोध, परम्पराओं के अन्धानुकरण का विरोध, धार्मिक सहिष्णुता का प्रतिपादन आदि। इसकी वजह से लोगों की सोच में परिचर्तन आया। छुआछूत जैसा अब कुछ समाज में नहीं रहा। लोगों की सोच में यह परिवर्तन नवजागरण की देन है।[15]

इस क्षेत्र में कई परिवर्तन आए जैसे सेना का आधुनिकीकरण हुआ, वही वटी तंत्र की पुनः व्यवस्था की गई। नवजागरण की वजह से भारत को आजादी प्राप्त हो सकी।

शैक्षणिक क्षेत्र में भी नवजागरण की वजह से परिवर्तन आया जैसे स्त्री शिक्षा की शुरुआत होना, विदेश में पढ़ाई करने के उद्देश्य से लोगों का जाना, शिक्षण की तरफ लोंगों का जागरूक होना आदि। नवजागरण ने देश के हरेक कोने में लोगों की सोच में गहरा प्रभाव डाला और लोगों की सोच में परिवर्तन भी आया। साहित्य भी इस परिवर्तन से अछूता नहीं रहा। जहाँ पहले श्रृंगारिकता, भोग, विलास के पदों के माध्यम से साहित्य की रचना की जाती थी, वहाँ 1857 के गदर के बाद नवजागरण की शुरुआत होने पर ही भारतेन्दु का आगमन हुआ, जिन्होंने 'नरेश युग' का अन्त करके 'जनयुग' की शुरुआत की। उनकी 'भारत दुर्दशा' नवीन युगीन भारत को लेकर चलती थी और तभी से हिन्दी साहित्य में नवजागरण देखने को मिलता है। ब्रजभाषा तथा अवधी को छोड़कर साहित्य अब खड़ीबोली में लिखा जाने लगा जो अब जनभाषा बन चुकी थी। नवजागरण की वजह से यह परिवर्तन मुमकीन हुआ

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 3, Issue 3, March 2016

और यह परिवर्तन हिन्दी साहित्य का सबसे बडा एवं महत्वपूर्ण परिवर्तन है क्योकि यही भाषा जनभाषा होने की वजह से अब साहित्य को आम् जनता भी आसानी से पढ़ सकने लगी एवं लेखकों के संदेश एवं उद्देश्य को अच्छी तरह से आत्मसात करने लगी। आजादी प्राप्त करने में यह बहुत बड़ी जरूरत भी थी कि लोग देश में हो रहे कार्यों को समझे और उसमें भाग लें, जिसे साहित्यकारों व लेखकों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से पूरा किया। प्रेमचंद ने साहित्य में प्रवेश लगभग उसी समय किया जब राजनीति में गांधीजी ने प्रवेश किया था। प्रेमचन्द को आर्दशोन्मुख यथार्थवादी कथाकार, गाँधीवादी, समाज सुधारक आदि कहकर यही प्रकट किया जाता है कि वे गांधीवाद से प्रभावित होकर और उनके सिद्धांतों के अनुसार रचना करने वाले कथाकार थे। गाँधीजी से प्रभावित होकर उन्होंने कई राष्ट्रप्रेम संबंधित कहॉनियाँ लिखी हैं - जिसमें सांसरिक प्रेम और देश-प्रेम, आल्हा, यह मेरी मातृभूमि है, मृत्यु के पीछे, सुहाग की साड़ी, राजभक्त, जुलूस, पत्नी से पति, शराब की दुकान, आहुति, जेल, आदि मुख्य है। प्रेमचंद ने समाज के हरेक पहलू को लेकर कहानी की रचना की है तथा उन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से लोगों को समाज के कुरीति-रिवाज, तथा जीवन की कठोर वास्तविकता, महाजनों के निष्ठुर पंजों से मुक्ति की छटपटाहट के लिए किसानों का विद्रोह, नौकरी पेशा, मध्यम वर्ग का अल्पवेतन, अंध संस्कार, अछूतों की दरिद्रता-ताड़ना, क्रांतिकारी देशभक्तों का उबलता आक्रोश, मानवीय विश्वासों के विरुद्ध धर्म के नाम पर ढोंग, न्याय के नाम पर नीति कुशल घूसखोर, विचारकों के कुचक्र, विदेशी शासन के दोष आदि सभी प्रकार को उजागर किया है। इन्हीं समस्याओं के आधार पर उन्होंने लोगों में नये युग के विचारों को भी प्रतिपादित किया है ताकि अपना देश तथा देशवासी पुरानी रूढ़ियों से मुक्त होकर नये भारत का निरूपण एक जुट होकर कर सके।[26]

संदर्भ

1. दलित साहित्य की भूमिका: कंवल भारती, पृष्ठ 67
2. http://www.bbc.com/hindi/entertainment/story/2005/07/050729_premchand_dalit.shtml
3. कथा-क्रम, दलित विशेषांक, नवम्बर 2000, पृ. 115
4. http://www.apnimaati.com/2015/01/blog-post_68.html
5. डॉ.बी.आर.आम्बेडकर, अनुवादक– आचार्य जुगलकिशोर बौद्ध, 'जातिभेद का बीजनाश', पृ. 31
6. डॉ.बी.आर.आम्बेडकर, आचार्य जुगलकिशोर बौद्ध (अनुवादक) 'जातिभेद का बीजनाश' सम्यक प्रकाशन, दिल्ली पृष्ठ-35
7. दिलीप काठेरिया, दरारें, दलित अस्मिता, जनवरी-मार्च 2015, पृष्ठ 59
8. डॉ.बी.आर.आम्बेडकर, आचार्य जुगलकिशोर बौद्ध (अनुवादक) 'जातिभेद का बीजनाश' सम्यक प्रकाशन, दिल्ली पृष्ठ-35
9. डॉ. संजय बाग, हीरो(कहानी), दलित अस्मिता पत्रिका, अप्रैल-जून 2013, पृष्ठ 4
10. वही, पृष्ठ 46
11. संपादकीय, जातिप्रथा के अभिशाप से त्रस्त विश्व का महान जनतंत्र, दलित अस्मिता, अप्रैल-जून 2013, पृष्ठ 9
12. चौथीराम यादव, दलित चिंतन की प्रतिपरंपरा और कबीर, दलित अस्मिता, अक्तूबर-दिसंबर 2010, पृष्ठ
13. हिन्दी साहित्य: रचना और विचार, नन्द दुलारे वाजपेयी, पृष्ट-20
14. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, मैनेजर पांडे, पृष्ठ- 58
15. ओमपकाश वाल्मीकि, दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ 59
16. ओमप्रकाश वाल्मीकि, बस्स! बहुत हो चुका, पृष्ठ 53
17. प्रेमचंद-जीवन और कृतित्व - हंसराज 'रहबर' रामलालपुरी, आत्माराम एण्ड संस, काश्मीरी, दिल्ली-6
18. प्रेमचन्दः उनकी कहानीकला-सत्येन्द्र, साहित्य रत्न भंडार, आगरा
19. प्रेमचन्द - डॉ. जगतनारायण हैकरवाला, प्रकाशक-अक्षरपीठ, प्रकाशन-84, मोहिलनगर, इलाहाबाद-6, प्रथम संस्करण - 1972
20. प्रेमचंदः एक अध्ययन- राजेन्द्र गुरू (जीवन, चिन्तन, कला) मध्यप्रदेशीय प्रकाशन, भोपाल, वर्ष-1958
21. प्रेमचन्द विश्वकोष- कमलकिशोर गोयनका, भाग-1, प्रकाशक- साहित्य निधि, सी-38, ईस्ट कृष्णनगर, दिल्ली-110005, प्रथम संस्करण-1981
22. प्रेमचन्द घर में - श्रीमती शिवरानी देवी, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली

ISSN: 2395-7639

International Journal of Multidisciplinary Research in Science, Engineering, Technology & Management (IJMRSETM)

(A Monthly, Peer Reviewed Online Journal)

Visit: www.ijmrsetm.com

Volume 3, Issue 3, March 2016

23. नवजागरण और आचार्य रामचन्द शुक्ल - बलीसिंह , शंकर पब्लिकेशन , भजनपुरा , दिल्ली - 110053, प्रथम संस्करण - 2000

24. भारतीय नवजागरण और भारतेन्दुः नर्मद युग का साहित्य - महावीर सिंह चौहान , अनुस्नातक हिन्दी विभाग , सरदार पटेल विश्वविद्यालय , वल्लभ - विद्यानगर , प्रथम संस्करण - 1995

25. नवजागरण के पुरोधा : दयानंद सरस्वती - डॉ . भवानीलाल भारतीय , प्रकाशक - वैदिक पुस्तकालय , परोपकारिणी सभा , दयानन्दाश्रम , केसरगंज , अजमेर , प्रथम संस्करण - 1983

26. हिन्दी साहित्य का बृहद इतिहास - भाग - 9, संपादक - सुधाकर पाण्डेय , नागरी प्रचारिणी सभा , वाराणसी , प्रथम संस्करण - 1977